चेतना का ऊर्ध्वारोहण कैसे?

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

चेतना का अर्थ है शक्ति और ऊर्ध्वारोहण का अर्थ है ऊपर की और जाना। जो वस्तु हल्की होती है, जिसमें गुणवत्ता होती है वह वस्तु ऊपर की ओर गमन करती है। आत्मा जब कर्मों के बोझ से आवृत्त होती है तो उसका ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता। जब कर्मों का आवरण हटता है और चेतना अपने वास्तविक स्वरूप में आती है तब आत्मा का ऊर्ध्वगमन होता है। पुनरुत्थान का कार्यक्रम भी ऊर्ध्वारोहण का कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम में आत्मा, परमात्मा, जीवजगत और सामाजिक कार्यों से सरोकार रखने वाले विषयों को प्रवचन के माध्यम से लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। मानव यदि अच्छी बात सुनता है, उसे जीवन में उतारता है तो उसका भी ऊर्ध्वारोहण होता है। पृथ्वी पर दो तत्व शाश्वत हैं– चेतन और अचेतन। चेतन कभी अचेतन नहीं हो सकता और अचेतन कभी चेतन नहीं हो सकता। चेतना शरीर के माध्यम से व्यक्त होती है। सभी मनुष्यों में सत्व, रज और तम तीन गुण पाये जाते हैं। सत्व गुण हल्का, प्रकाशक और जीव को ऊर्ध्वगामी बनाता है। रजो गुण मानव में कामवासना उत्पन्न करता है और चंचल बनाता है। रजो गुण लाल रंग का होता है। तमो गुण अन्धकार युक्त और मोह उत्पन्न करने वाला होता है। यद्यपि ये तीनों गुण सभी मनुष्यों में पाये जाते हैं किन्तु जिसमें जिस गुण की प्रधानता होती है वह मनुष्य उसी प्रकृति का हो जाता है। सत्व गुण प्रधान मनुष्य अहिंसात्मक और शांत प्रवृत्ति का होता है। उसका सम्पूर्ण कार्य उसके व्यवहारों से झलकता रहता है। विज्ञान का एक नियम है कि शक्ति कभी नष्ट नहीं होती उसका रूपान्तरण होता है। पुद्गल में रूप, रस, गंध, स्पर्श होता है। यह गलन और मिलन धर्मा है। चेतना ज्ञान, दर्शन और चारित्र युक्त है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप यही है।

कार्मण शरीर पुण्य पाप का चिट्ठा है। मन, वचन, काया का क्रियाकलाप तैजस शरीर करता है। इसमें रूपान्तरण होता रहता है। मानव का शरीर एक फैक्ट्री है इसमें अनेक गतिविधियां होती रहती हैं। चेतन और जड़ के संयोग से यह जीवन चलता है। महर्षि पतंजलि ने मन को महत्व नही दिया। उनका योगसूत्र शुरू होता है चित्त की वृत्तियों के निरोध से। चित्त हमारे भीतर की कल्पना है, जो मन के ज्ञानात्मक पक्ष का संचालन करता है। मन के दो पक्ष हैं– ज्ञानात्मक तथा भावात्मक। जो उसका ज्ञानात्मक पक्ष है, उसका संचालन चित्त के द्वारा होता है और जो उसका क्रियात्मक पक्ष है उसका सचांलन भाव के द्वारा होता है। मन दो का प्रतिनिधित्व कर रहा है – चित्त का तथा भाव का। मन अचेतन है, चित्त चेतन है। शरीर अचेंतन है किन्तु चेतना से युक्त होने के कारण चेतना की सारी क्रिया करता है, वैसे ही मन भी अचेतंन है। मन, वचन तथा शरीर तीनो अचेतन हैं किन्तु चेतना से युक्त होकर चेतना की क्रिया करते हैं। मन पुदगलो को ग्रहण करता है। हमारे भाव सूक्ष्मतर हैं तथा मन भी सूक्ष्म है। वे हमारे सामने नही है। जो दिखाई देता है वह शरीर है। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति मिलता है प्रश्न किया जाता है आपका स्वास्थ्य कैसा है? इसमें जानने योग्य बात यह हैं कि जो दिखाई दे रहा हे वह हमारा स्थूल शरीर है। उसके भीतर एक सूक्ष्म शरीर है तथा उसके भीतर सूक्ष्मतर शरीर है। हम स्थूल को देखते हैं किन्तु यदि सूक्ष्म और सूक्ष्मतम शरीर के बारे मे चिन्तन न करें तो इस शरीर को समझा नहीं जा सकता। स्थूल शरीर का निर्माणं होता है कर्म शरीर के द्वारा और निर्माण में निमित्त बनती है शरीर पर्याप्ति। वह पुद्गलों को ग्रहण करती है तथा शरीर के निर्माण में सहयोग देती है। कर्म के जितने विपाक होते हैं उन सब विपाको के प्रकोष्ठ हमारे मस्तिष्क और शरीर मे विद्यमान हैं। कर्म शरीर के जो स्पन्दन और विपाक बाहर आते हैं उनका संवादी अंग मन बन जाता है। उसके माध्यम से वह अपना कार्य करता है।

कर्म शरीर के जितने विपाक हैं, उन सबके संवादी अंग हमारे शरीर मे विद्यमान हैं। ध्यान के द्वारा आध्यात्म का विकास होता है, आध्यात्मिक शक्तियां बढ़ती है, मन पर नियंत्रण होता है। अगर इस सन्दर्भ मे यह सोचा जाये कि ध्यान के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य सर्वत्र उपलब्ध हो जाये तो यह सम्भव नही है। यह ध्यान का मुख्य कार्य नहीं है। इतना अवश्य है कि अगर

असंतुलन है तो वह ध्यान के द्वारा ठीक किया जा सकता है। कोई शारीरिक रोग है तो वह इसके द्वारा सम्भव नहीं है। उसके लिये आसन और प्राणायाम के प्रयोग भी जरूरी हैं। कायोत्सर्ग को छोड़ कर कोई भी लम्बा ध्यान प्रारम्भ मे सही नही है। हमारे कर्म विचित्र हैं, हमारी समस्याएं अनेक हैं तो उनको सुलझाने के उपाय भी अलग–अलग हैं। जो बात ध्यान से नही हो सकती, वह आसन से हो सकती है। अतः मन को नियंत्रित करने के लिए ध्यान आवश्यक है। ध्यान के समय चित्त अन्य विषयों से हट जाता है और केवल ध्येय विषयक वृत्ति का ही आवागमन होता है। ध्यान में तेल की धारा की तरह एक ही वृत्ति का प्रवाह होता रहता है। ध्यान मन को शान्त एवं एकाग्र कर अंतर्मुखी बनाने की एक अनूठी विधा है। यह साधक के भीतर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग–द्वेष, अहंकार आदि विकारों को क्षीण कर देता है। तब साधक दिन भर के क्रियाकलाप करते हुए भी अपने भीतर स्थित परम चेतना के साथ जुड़ा रहता है और धीरे–धीरे चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता है। शक्ति ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होकर शक्ति प्रदान करती है और मन की चंचलता दूर हो जाती है।